Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

19

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता साहित्य में सामाजिक–परिवेश

डॉ. बसवराज के. बारकेर
प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष एवं शोध निदेशक
हिंदी अध्ययन विभाग, महाराजा कॉलेज
मैसूर विश्वविद्यानिलय, मैसूर

बलरामा
शोधार्थी
हिंदी अध्ययन विभाग, महाराजा कॉलेज
मैसूर विश्वविद्यानिलय, मैसूर

भूमिका

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कविता साहित्य में नाटकीय रूप से बदलाव का दर्शन होता है, जो भारत के बदलते सामाजिक–राजनीतिक माहौल के साथ–साथ समकालीन जीवन की पेचीदगियों को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। आधुनिक हिंदी कवियों की रचनाएँ तेजी से हो रहे वैश्वीकरण, तकनीकी सुधार और बढ़ती राजनीतिक जागरूकता को दर्शाती हैं, जो सदी के मोड़ की विशेषता थी। पारंपरिक साहित्यिक रूपों और समकालीन नवाचारों दोनों से प्रेरणा लेते हुए, इन कवियों ने बौद्धिक से लेकर भावनात्मक, व्यक्तिगत से लेकर राजनीतिक तक कई तरह के मुद्दों की खोज की है। सामाजिक विषयों पर बढ़ता जोर इक्कीसवीं सदी में हिंदी कविता की एक परिभाषित विशेषता है। अशोक वाजपेयी, कुंवर नारायण और विष्णु खरे जैसे कवि अन्याय, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता और पर्यावरण को होने वाले नुकसान के खिलाफ आवाज उठाते रहे हालाँकि, सुमन पोखरेल और यशोधरा मिश्रा जैसे हाल के लेखकों ने कविता में अधिक चिंतनशील, सूक्ष्म शैली लाई है, जो कवि के अनूठे दृष्टिकोण और व्यक्तिगत चुनौतियों को दर्शाती है। ''कई कवियों की रचनाएँ अब पहचान, लिंग और अस्तित्ववाद पर बहुत ज़्यादा ध्यान केंद्रित करती हैं क्योंकि वे इस बात की जाँच करते हैं कि समाज में स्वयं की सीमाएँ कैसे बदल रही हैं जो कि अधिक से अधिक विभाजित होता जा रहा है'' ।1

सामाजिक माध्यम और अंतरजाल के विकास के कारण इक्कीसवीं सदी में कविताएँ भी अधिक सुलभ हो गई हैं। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म ने कवियों को दुनिया भर के पाठकों तक सीधी पहुँच प्रदान की है, जिससे एक अधिक समावेशी और विविध साहित्यिक बातचीत की सुविधा मिली है। कवि सोशल मीडिया, विशेष रूप से फेसबुक और ट्विटर जैसी साइटों की बदौलत भाषा, रूप और विषय–वस्तु के साथ प्रयोग करके साहित्यिक हलकों (कंठों) की पारंपरिक सीमाओं को तोड़ने में सक्षम हुए हैं। कवियों की एक युवा पीढ़ी इस नई लहर का हिस्सा है, और वे अक्सर अधिक सुलभ, अनौपचारिक तरीके से लिखते हैं जो साहित्यिक उपकरणों को साधारण भाषा के साथ समाहित है। पंकज दुबे और नीलेश मिसरा जैसे कवियों ने अपनी आधुनिक कविता के लिए कुख्याति प्राप्त की है, जो अक्सर व्यक्तिगत अनुभवों और कथा पर आधारित कविताएँ बनाते हैं जो व्यापक पाठकों को आकर्षित करती हैं।

इक्कीसवीं सदी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में काफी उथल–पुथल का समय रहा है। यह परिवर्तन तकनीकी विकास, वैश्वीकरण, बदलते सत्ता संबंधों और विकासशील सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्यों द्वारा प्रेरित है। देशों को तेजी से बढ़ते शहरीकरण और आर्थिक विस्तार को प्रबंधित करने की संयुक्त कठिनाई का सामना करना पड़ा है, साथ ही साथ बढ़ती सामाजिक असमानता, राजनीतिक विखंडन और पर्यावरणीय मुद्दों से भी निपटना पड़ा है। यह एक ऐसी चुनौती रही है जिसे आसानी से पार नहीं किया जा सका है। अर्थ व्यवस्थाओं के परस्पर जुड़ाव में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, और डिजिटल प्रौद्योगिकी के प्रसार ने व्यवसायों, श्रम बाजारों और सरकार में मूलभूत परिवर्तन लाए हैं। इन विकासों के परिणामस्वरूप कई देशों में राजनीतिक द्रुवीकरण की एक बड़ी डिग्री देखी गई है, जिसमें लोकलुभाव समूहों ने सरकार की ओर से असमानता और अक्षमता के रूप में प्रतिक्रिया के रूप में लोकप्रियता हासिल की है। ''इसके अतिरिक्त, राष्ट्रों ने आव्रजन और सांस्कृतिक आत्मसात की जटिलता के साथ–साथ वैश्विक कनेक्शन की माँगों और राष्ट्रीय संप्रभुता को बनाए रखने की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाने के मुद्दे से भी जूझ रहे हैं।''[2]

वैश्विक स्तर पर, इक्कीसवीं सदी की विशेषता सदी की शुरुआत से ही भू–राजनीतिक शक्ति गतिशीलता में परिवर्तन है। शीत युद्ध के बाद, संयुक्त राज्य अमेरिका को बेजोड़ महाशक्ति के रूप में देखा गया था। हालाँकि, चीन की वृद्धि और रूस की वापसी दोनों ने स्थापित व्यवस्था के लिए एक बढ़ता हुआ खतरा पेश किया है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, दुनिया अधिक बहुद्रुवीय हो गई है, और वैश्विक शासन संरचनाएँ और संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे संगठन उभरी हुई नई वास्तविकताओं के साथ तालमेल बिठाने के लिए बढ़ते दबाव में हैं। गैर–राज्य संस्थाओं के बढ़ते प्रभाव के परिणामस्वरूप कूटनीति और अंतर्राष्ट्रीय कानून दोनों में बदलाव आया है, जिसमें बहुराष्ट्रीय उद्यम, अंतर्राष्ट्रीय संगठन और अंतरराष्ट्रीय आंदोलन शामिल

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

हैं। वैश्वीकरण ने अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य, संचार और यात्रा को सरल बना दिया है फिर भी, इसने वैश्विक महामारी, जलवायु परिवर्तन और साइबर खतरों जैसे मुद्दों को भी सामने लाया है, जिनके लिए राज्यों के बीच अधिक सहयोग की आवश्यकता है। वैश्वीकरण ने इन लाभों को हासिल करना आसान बना दिया है।

इक्कीसवीं सदी भूमण्डलीकरण की सदी है, जिसमें सबकुछ भूमण्डलीय है। रिश्ते, नाते, संस्कृति, परम्परा, विश्वास आदि सब कुछ भूमण्डलीकरण से प्रभावित जान पड़ते हैं। इस प्रभाव से कवि समाज भी अछूता नहीं रह गया है। वर्तमान युग की इस संक्रमणकालीन स्थिति को तत्कालीन कवि ने भी अनुभव किया है और इस अनुभव को अभिव्यक्ति देने हेतु कवि लोगों ने विषय एवं वातावरण के अनुरूप ही अभिव्यक्ति के विविध रूपों को अपनाया है। इन विविध रूपों में कवियों ने भाषा, बिम्ब, अलंकार, प्रतीक आदि को भी भूमण्डलीय रूपों के अनुरूप अपनाया है। आज हर रिश्ते–नातों, परिवारों आदि में भूमण्डलीकरण के विकृत स्वरूप विकसित हो चुके हैं। जिसने मानव को स्वयं तक सीमित कर दिया है। संस्कृति, अर्थ, राजनीति ने भी अपने नये तेवर दिखाने शुरू कर दिये हैं। इन परिस्थितियों से जो मानव एवं इसका स्वभाव उपजा है वह अपने अतीत से बिल्कुल विमुख है। इक्कीसवीं सदी के तत्कालीन कवियों ने अपने यथार्थ बोध को अभिव्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति के निम्न रूपों का सरल, सहज, सटीक एवं प्रभावोत्पादक प्रयोग किया है।

स्त्री विमर्श अनेक विरोधों के बावजूद इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में अपना पृथक अस्तित्व बना चुकी हैं। वर्तमान में स्त्री–विमर्श और स्त्रीवादी या महिला–लेखन पर काफी कुछ सार्थक लिखा जा रहा है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का उद्‌भव स्वतः ही मानसिक भावों के उद्‌वेलन तथा उनकी अभिव्यक्ति से हुआ है अर्थात् कोई सायास प्रयास नहीं है। वर्तमान जीवन शैली से प्रभावित अनेक साहित्यकारों ने इस विमर्श पर अपने परिवेश से जुड़ी स्त्री सम्बन्धी समस्याओं को रचनाओं के माध्यम से उकेरा है। साहित्यकारों का एक बहुत बड़ा पुरुष वर्ग 20वीं सदी से ही स्त्री विमर्श को वर्णित करता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक नये युग का साहित्य में और हमारी जीवन शैली में पदार्पण हुआ। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री–लेखन की बाढ़–सी आई-गई क्योंकि अनेक कवयित्रियों एवं लेखिकाओं ने पुरानी परम्पराओं की बेड़ियों को तोड़कर साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। यह एक प्रकार का विद्रोह ही था–स्त्री समाज का। धीरे–धीरे प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री अपनी योग्यताओं के कारण पुरुष समाज के बराबर आकर खड़ी हो गई या यूँ कहे आगे निकलने लगी। चिरकाल से घर की चाहर दिवारी में बंद स्त्री अपने अधिकारों से परिचित होकर उन पुरानी सड़ी–गली परम्पराओं को तोड़ने लगी। जिन्होंने उनके अस्तित्व को दबाकर रखा था। हालांकि अनेक कवि एवं लेखकों ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया परन्तु फिर भी स्वानुभूति एवं सहानूभूति से बहुत अंतर होता है। स्त्री रचनाकार ही स्त्री मानसिकता को अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे अनेक कवयित्रियों के नाम इस कड़ी में जुड़ने लगे और आज एक सशक्त कवयित्रियों का समूह इस विमर्श की सार्थक परवी के लिए उपस्थित है। ''इक्कीसवीं सदी में स्त्री विमर्श पर विपुल साहित्य लिखा गया है इसमें कितना सार्थक सहित्य है तथा कितना स्तरीय इस पर अभी कोई निर्णायक टिप्पणी नहीं की जा सकती है''।[3]

सविता सिंह अपने काव्य संग्रह 'नींद थी और रात थी' में नारी जीवन की संघर्षमय गाथा का सहानुभूति एवं स्वानुभूति के परिप्रेक्ष्य में गहन चिंतन करती हुई 'मैं कथा कहूँगी' कविता में कहती हैं –

"स्त्रियों!
बार–बार मैं तुम्हारी कथा कहूँगी।
उतरूँगी जीवन की अँधेरी खोह में,
दूर तक बढ़ूँगी।
पहुँचूँगी वहाँ, जहाँ तक थोड़ी–सी रोशनी बाकी होगी।
देखूँगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे,
जो अब तक दस्तावेज़ों की तरह सुरक्षित होंगे वहाँ।
उससे ही जान लूँगी तुम्हारा हाल।
और यह सब समझ लूँगी कि बहुत फ़र्क़ नहीं है
एक–दूसरे के हाल–चाल में अब भी।"

सामाजिक परिवेश में स्त्री हमेशा अपने-आप को असुरक्षित महसूस करती है। ''घर में और घर के बाहर प्रत्येक जगह उसे भय, द्वेष एवं स्पर्धा का सामना करना पड़ता है।''4 सविता सिंह अपनी कविता 'एक शीशा थी वह' में इसी बेचैनी को व्यक्त करती हैं :

"बदल गई थी मगर वह एक पारदर्शी शीशे में,
जिससे आर–पार देख रही थी खुद को।

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

पसरा था बाहर अब भी कितना भय, कितनी घृणा,
द्वेष और स्पर्धा उसके लिए।
मृत्यु और नींद महसूस होती थी उसको।
एक विस्तार अजीब–सा,
भयावह और सुनसान इस समय।"

आधुनिक युग की कवयित्रियों ने स्त्री की मनोदशा को सौहार्द और आत्मीयता से समझा है। संवेदना का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसे महिला लेखन ने संस्पर्श न किया हो। स्वयं के जीवन की तथा अपने संपर्क में आने वाली प्रत्येक पीड़ित–शोषित स्त्री की मनोव्यथा को इनकी कलम ने पकड़ा है। ''महिला लेखन में कवयित्रियों ने वर्तमान परिदृश्यों के संदर्भ में व्यंग्य, तीक्ष्णता, विद्रोह और आक्रोश को सशक्त स्वर प्रदान किया है।''5

'आख़िर बीवी हूँ तुम्हारी' कविता, जो 'किसका है आसमान' काव्य संग्रह में संकलित है, में सविता भार्गव व्यंग्य के द्वारा स्त्री जीवन की विवशता को इंगित करती हुई कहती हैं—

"माफ़ कर दो मुझे,
थके–हारे दफ़्तर से लौटे तुम,
और मैं नहीं थी चाय–नाश्ते के साथ मुस्कराती हुई।
नहीं पहुँच पाई घर, तुम्हारे पहुँचने से पहले...
माफ़ कर दो मुझे,
नहीं छुड़ा पाई तुम्हारी कमीज़ का दाग,
रगड़ते–रगड़ते फूट गया मेरे अंगूठे का फफोला।
ग़लती मेरी ही थी,
हड़बड़ाहट में रोटी की जगह पकड़ लिया था गरम–गरम तवा।"

स्त्री की जीवन शैली इतनी व्यस्त है कि यदि वह एक भी जिम्मेदारी से चूक जाती है तो स्वयं अपराध बोध से ग्रस्त हो जाती है। अपनी विवशता एवं पीड़ा का तो उसे अहसास ही नहीं रहता है दूसरों को बुरा ना लगे–सिर्फ इसी जुगत में मरती खपती रहती है।

सामाजिक रीति–रिवाजों को परम्परा के नाम पर ताउम्र औरतों को ढोना पड़ता है। बाल्यवस्था में विधवा हुई बुआ की दिनचर्या देखकर रोंये खड़े हो जाते हैं। उन्हें वह दुख भोगना पड़ रहा है जिसका अर्थ भी उसे उस उम्र में नहीं पता था। सविता भार्गव जी अपने काव्य संग्रह 'किसका है आसमान' में इसी विडम्बना का हृदयविद्रावक वर्णन अपनी लम्बी कविता 'बड़ी बुआ' के माध्यम से करती हैं—

"ढलका नहीं अँसुवन जल,
बोई नहीं कोई 'प्रेम बेलि'।
एक कुँआरी उमर
धुलती रही नर्मदा के कुँआरे जल में।
होते रहे मंगल–कारज,
पूजते रहे कुल के देवी–देवता।
अमंगल–सी बैठी रहीं वे बाहर आँगन में,
ताकती धूसर रास्तों को।
एक जोड़ा भूरी दृश्यहीन आँखें।"

स्त्री की यथास्थिति को बनाये रखने के गुनहगार केवल पुरुष समाज ही नहीं है, स्त्री भी स्वयं दूसरी स्त्री के अस्तित्व को सदियों से नकारती आयी है। घर में लड़की के जन्म पर पहले दादी दुखी होती है, फिर माँ दुखी होती है, उसके बाद नवजात शिशु (लड़की) के प्रति व्यवहार में इसलिए उपेक्षिता भाव लाया जाता है कि वह लड़की है''।6 उसे कदम कदम पर अहसास करवाया जाता है, उसे लड़की बनाया जाता है। यह समाज उसे उसी ढाँचे में ढालता है जो इसे चाहिए होता है उसकी प्राथमिकताएं उसके जन्म लेते ही निर्धारित कर दी जाती है। 'खामोशियाँ बोलती है' काव्य संग्रह में संकलित कविता 'लाचारी' इसी विड़म्बना को प्रस्तुत करती है–

''लड़की का जन्म घर में हुआ,
इसलिए दोबारा से
औलाद को जन्म देने की हुई तैयारी।
माँ के सिर एक के बाद
अब दूसरी ज़िम्मेदारी थी भारी।

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

मुझे पालना है, इसको भूल
लड़के के जतन में लग गई
माँ व दादी हमारी।"

आज दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श की गूंज ने समाज में खलबली मचा दी है। दलित साहित्य दलितों की आप बीती का साहित्य है। उनका जिया हुआ, भोगा एवं झेला हुआ सत्य है। जीवन के कटु अनुभवों का बयान है। सत्य को सामने रख उससे निपटने का, उससे मुक्त होने का आह्वान करता साहित्य है। हजारों वर्षों से हमारी समाज व्यवस्था में नारी, कृषक एवं दलित ही पीड़ित रहे हैं। अनंत यातनाओं की दुःखों की अंतहीन त्रिवेणी आज भी प्रवाहित है। दुःखों की एक लम्बी श्रृंखला है। हजारों वर्षों से एक समाज ने जो दुःख भोगा जो सहा, जिन परिस्थितियों से वे गुजरे, उसकी प्रतिक्रिया, अभिव्यक्ति, उस व्यवस्था के प्रति विद्रोह, नकार और संघर्ष करते अपने स्वत्व अधिकार को प्राप्त करने का तीव्र स्वर दलित साहित्य है। दलित साहित्य वंचितों की चेतना का स्वर है, संगठित होकर उसके साथ संघर्ष कर अपनी स्थिति में सुधार करने का स्वर है। घृणा, अन्याय, अत्याचार करने की जो सदियों से मानसिकता रही है उसके साथ लड़ाई करने, जूझने और अपने हक की सुविधा, व्यवस्था प्राप्त करने का आह्वान है। अत्याचार सहते वर्ग की ऑखें खोलने का पूरा–पूरा प्रयास दलित साहित्य ने किया है।

इक्कीसवीं शती के प्रथम दशक के साहित्य लेखन की विशेषता यह है कि दलित लेखकों ने अपनी जिम्मेदारी को निभाया है। समाज, विशेष रूप से शहरों की नागरीय सभ्यता से कोसों दूर रहते गिरी–कन्दराओं, गहन जंगलों, अविकसित सर्व साधनों से रहित (पानी, स्वास्थ्य और भोजन) उस वर्ग तक पहुंचने और उन्हें प्रबोधन करने का कार्य निश्चित ही अभिनंदनीय है। आपसी झगड़ों, दल, गुट, टोला, पाड़ा, मुहल्ला, घर, आंगन में सिमटी गाली गलौज कर तू तू मैं मैं में अपनी सारी शक्ति खर्च करते एक बड़े वर्ग, समुदाय को उनके अस्तित्व बोध का परिचय कराने का काम किया है। रात्रि में टोला, पाड़े की बड़ी–बूढ़ी बुजुर्ग महिलाओं और उनकी बहू–बेटियों को मनोरंजनात्मक उपदेशात्मक चार कथा–कहानियां सुना कर अपने को समाज का तिरस्कृत, बहिष्कृ त, अवहेलित घटक न समझ स्व को पहचानने की ताकत दी है। जनचेतना जगाने वाले पथनाट्यों का आयोजन इसमें विशेष उल्लेखनीय है।

किताबों को पढ़ने से बेहतर है इन्सानों को पढ़ना। प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, शैलेश मटियानी, सआदत हसन मन्टो, चेखव आदि का मानव जीवन निरीक्षण विलक्षण रहा। टालस्टाय यदि युध्द भूमि में नहीं गए होते तो 'वार अंड पीस' कालजयी कृति नहीं बन पाती। ओमप्रकाश वाल्मीकी, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौर, सुरेश मूळे का मानव स्वभाव निरीक्षण अद्‌भुत है। उनकी कृतियां दिशा दर्शन में मील का पत्थर कहें तो अत्युक्ति नहीं। अम्मा कहानी तीन पीढ़ियों की कहानी है। नागफनी रूपनारायण सोनकर की दलित समाज की सच्चाई पेश करती नए रूप में नई दिशा की ओर ले जाती है। इसमें पूरे दलित समाज का चित्रण है और विशेष बात यह है कि दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वास, झूठी भ्रामक मान्यताएं, परम्परागत, पीढ़ियों से चली आ रही डोरे, ताबीज, फूंक, फेरे–उखाड़ फेंकने का जबरदस्त आह्वान है। जितना शोषण साधारण रूप में समाज के उच्च वर्ग द्वारा नहीं होता उससे दुगना शोषण सरकारी कार्यालयों, उच्च शिक्षा संस्थानों, सरकार मान्य पर बिना अनुदान संस्थाओं में आज जारी है। ''कब तक चलता रहेगा यह? एक भविष्योन्मुख साहित्यकार रूपनारायण सोनकर ने जो सतत विरोध, अवरोध, असहमति, अस्वीकृति जताते रहे हैं और इस वर्ग को चेता रहे हैं, यह प्रशंसनीय है''।[7]

मनुष्य के जीवन में कुछ प्रमुख चरण आते हैं– शैशवावस्था, बालावस्था, किशोरावस्था, और वृद्धावस्था। मनुष्य इन चरणों में कई तरह के पहलू से गुजरता है। मानव को अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन सभी समस्या के माध्यम से अनेक अनुभवों को प्राप्त करता है और इन्हीं अनुभव के सहारे ही जीवन जीता है। खास तौर पर इन्हीं अनुभव के साथ वृद्ध लोग अपने और अपने आस-पास के लोगों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। यह अनुभव ही वृद्ध लोगों की संपत्ति की तरह रह जाता है। समाज में हम वृद्ध लोगों के रहन-सहन और वे उनका जीवन किस प्रकार जीते हैं यह सब देखते हैं। कुछ प्रमुख विद्वानों ने इन वृद्ध जीवन को साहित्य में एकत्रित करने का प्रयास किया है। वृद्धों के जीवन पर कई उपन्यास, कहानियाँ और कविताए रची गई है। अनेक रचनाकारों ने कई दृष्टिकोण के माध्यम से अपने रचनाओं में वृद्ध जीवन को अभिव्यक्त किए हैं।

बृहत हिंदी कोष के अनुसार विमर्श का अर्थ विचार, विवेचन, समीक्षा, तर्क, ज्ञान, चरम बिंदु आदि है। मनुष्य की वृद्धावस्था साठ–पैंसठ वर्ष के बाद आरंभ होता है। यह नियम वैज्ञानिक हो सकता है सामाजिक नहीं। कई ऐसे परिस्थितियाँ देखी जाती है कि युवा जैसा उत्साह वृद्धों में भी देखने के लिए मिलता है। सामान्यतः हम कह सकते हैं कि विमर्श जो है किसी भी विषय को संपूर्ण रूप से समझने के लिए सहायक है। ''अनेक दृष्टियों

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

के माध्यम से विषय का मूल्यांकन करने में महत्वपूर्ण है। विमर्श उसे भी कह सकते है जो विविध मूल्यों से तथ्यों का संग्रहण करके एक विषय के गुण दोषों को परीक्षण करने के लिए सहायक है''।[8]

समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्शों मे आदिवासी विमर्श एक प्रमुख विमर्श के रूप में उभर कर सामने आया है। जिस तरह से समाज में कुछ वर्ग अपना स्थान पाने से वंचित रह गए उसी तरह हिंदी कविता में आदिवासी समाज का अंकन लगभग न के बराबर हुआ है। साहित्य समाज परिवर्तन का माध्यम है। मनुष्य के सुख–दुःख का प्रतिबिंब जिस विमर्श में प्रस्तुत होता है उस विमर्श को साहित्य कहा जाता है। साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के विविध विचारों को रेखांकित किया जाता हैं। इसलिए वर्तमान साहित्य ने एक नया वैचारिक स्वरूप प्राप्त किया है। जिसमें समाज का हित दिखाई देता है। वर्तमान समय में भारतीय समाज की वैचारिकी को देखते हुए विविध विमर्श सामने आ रहे हैं। दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श और पर्यावरणीय विमर्श इन सभी विमर्शों ने अपने–अपने स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की भूमिका को प्रस्तुत करने का काम किया है। इन सभी विमर्शों में कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास विधाओं में साहित्य लिखा जा रहा हैं।

भारत के झारखंड राज्य में आदिवासी के बहुत क्षेत्र है। इस राज्य के आदिवासी समूह कई समस्याओं से जूझ रहे हैं। इस राज्य का गठन 15 नवंबर 2000 में हुआ। इस राज्य के गठन के पहले और बाद में भी वहाँ के आदिवासियों के संसाधनों पर बाहरी लोगों ने अपना अधिकार बनाया है। इसके चलते वहाँ के आदिवासी को विस्थापन जैसे मुख्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आधुनिकीकरण के चलते अब शहरों में प्रदूषण–ही–प्रदूषण दिखाई दे रहा हैं। जिसके कारण प्रकृति ने भी अपना रूप और रंग बदल दिया है। प्राकृतिक ऋतुमानों में भी बदलाव आ गया है। साथ ही पृथ्वी के विविध जीव–जंतुओं का भी वास्तव्य नहीं दिख रहा है। बल्कि गर्मी, धूल, ध्वनियों की आवाजों का शोर और एक दूसरे को मार–काट कर आगे बढ़ जाने की स्थिति बढ़ गई है। झारखंड के कुडुख भाषी कवि महादेव टोप्पो अपनी कविता 'झारखंड गठन के बाद–कुछ दृश्य' में लिखते हैं–

"राँची अब सिर्फ
एक पर्यटन स्थल नहीं है
राजधानी है
तरक्की की ऊँचाई में बढ़ते
भारत में एक उभरते महत्वाकांक्षी शहर का नाम है
जहाँ से गायब है अब ठंडी हवा
गायब है पक्षियों का कलरव
शोर है जुलूसों का, गर्मी है, धूल है
और होड़ है एक–दूसरे को काट आगे बढ़ जाने की",

आदिवासी भारत के मूलनिवासी हैं फिर भी आदिवासी को वनवासी कहा जाता रहा हैं। ''वनवासी यह शब्द उनको मान्य नहीं है, जिस तरह से 'आदिवासी' शब्द में स्वाभिमान है, अस्मिता है, आदिवासियत है उस तरह से 'वनवासी' शब्द में नहीं है।''[9] इसलिए आदिवासियों ने, आदिवासी साहित्यकारों ने इस शब्द का विरोध किया है। वे कहते हैं कि 'हम वनवासी नहीं हैं, हम आदिवासी हैं, भारत के मूलनिवासी हैं'। किंतु तथाकथित वामपंथी समाज आदिवासियों को 'वनवासी' कहकर संबोधित करता है। उनको पुरुषोत्तम कुमरे अपनी कविता 'प्रश्न?' के माध्यम से सवाल करते हैं–

"आम्ही आदिवासी
खरे भारतवासी
राहतो कधी उपाशी
आमच्याच राज्यात आम्ही
का झालो वनवासी?",

आदिवासी हजारों सालों से जल, जंगल और जमीन की लड़ाई लड़ता आया है फिर भी उनको–उनके मूलभूत अधिकार नहीं मिल पाए हैं। क्योंकि असंवैधानिक पद्धतियों से उनके जीवनोपयोगी संसाधनों को लूटा जा रहा है। ''इसलिए प्राचीन काल से अबतक का दौर आदिवासियों के लिए संघर्ष का दौर माना गया है।''[10] डॉ. भगवान गव्हाड़े अपनी कविता 'उलगुलान' में आदिवासी जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करते हैं–

"दलित–आदिवासी–बहुजन और शोषितों की मुक्ति के लिए
वैश्वीकरण के इस अग्निगर्भ का कुचक्र भेदना होगा ममें भी
न केवल अपने मूलभूल अधिकार के लिए
बल्कि लड़ना होता

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

दहशतगर्दों से आतंकियों से
हिंसाचारियों से बलात्कारियों से
बर्बर राजनीतिक–सामाजिक व्यवस्था से
भले ही लड़ाई का स्वरूप बदल चुका हो
समय और काल के अनुसार
परिस्थिति और प्रश्न भले बदलते रहते हों
किंतु लड़ना होगा हमें हर हाल में
समता, बंधुता और विश्व शांति के लिए
वैचारिक लड़ाई का यह महासंग्राम
जारी रखना ही होगा युग–युग निरंतर...",

आदिवासी कवयित्रियों में निर्मला पुतुल सर्वोपरि कवयित्रि के रूप में गढ़ी गई है। वे अपनी कविताओं में दो अस्मिताओं के संघर्ष को दिखाती हैं, एक आदिवासी और दूसरी स्त्री का संघर्ष। उनकी कविताओं के मुख्य स्वरों के बारे में उमा शंकर चौधरी लिखते हैं "आदिवासियों के समाज का बर्बरतापूर्ण इतिहास है, संघर्ष है और अंधकार है। चूँकि निर्मला एक स्त्री हैं इसलिए दुख और उसकी पराजय–सब यहाँ बहुत ही विश्वसनीय रूप में आया है। इन कविताओं में विचार है या कहें तो वर्षों से चला आ रहा विमर्श है परंतु यह कहीं भी विमर्श की कविता नहीं लगती है। ''कहने का अर्थ साफ है कि निर्मला की कविताओं में इन विचारों के साथ–साथ कवितापन में कहीं भी कमी नहीं हैं।''[11] चूँकि कवयित्री ने इन दुखों को या तो खुद जिया है या फिर बहुत ही करीब से इन्हें देखा है इसलिए ये कविताएँ एक वेदना और प्रतिकार के स्तर पर सामने आई हैं।", इन्हीं वेदनाओं को निर्मला पुतुल 'बेघरों के सपनों से जुड़ा मेरा घर' कविता में अपने वेदनाभावों को नितांत उल्लेख करते हुए कहती है–

"मैं घर बना रही हूँ
घर मुझे बना रहा है
मैं कह नहीं सकती
लेकिन बात दरअसल यह है कि
मैं एक घर बना रही हूँ
घर, जिसमें मेरे सपने जुड़े हैं
मेरे अरमानों की ईंट लग रही है जिसमें
मैं घर बना रही हूँ"

उत्तर आधुनिक दौर मे यथार्थ की झलक निरन्तर कठिन होती जा रही है। आधुनिकता ने हमारी सभ्यता और संस्कृति के मूल ढाँचे को झकझोर कर रख दिया है। आज नये बाजर भूमंडलीकरण के रूप मे फैल रहे हैं। नये साम्राज्यवाद ने ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दी है, जिनमे मूल्यों, आदर्शों, सपनों, स्मृतियों एवं मानवीय गरीमा की बात करने वाला अपने ही लोगों के बीच फालतू और निर्वासित हो जाता है। वर्तमान में व्यक्ति की मानसिकता स्वार्थ केन्दित्र होती जा रही है। आज की युवा पीढ़ी में भूमंडलीकरण के कारण भौतिक ससांधनों के प्रति जो मोह बढ़ा है, प्रेम को लेकर उनके मन में जो विकृति आई है, धन के पीछे जो अंधी दौड़ उनमें बढ़ी है, उसका उत्तर आधुनिक कविता में बखूबी चित्रण किया गया है। ''केदारनाथ सिंह, यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण, कात्यायनी, कुमरा अंबुद, नीलेश रघुवीर, लीलाधर जगूड़ी, विष्णु नागर, नरेन्द्र जैन, डॉ0 केशवदेव शर्मा, उपेन्द्र कुमार, पंकज राग, राजनारायण बिसारिया आदि इक्कीसवीं सदी के अनेकानेक कवियों ने समाज के विभिन्न चित्र उकेरे हैं।''12 लीलाधर जगूड़ी ने उपयोगितावादी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए लिखा है–

"किसी भी शहर को अब कोई नही जानता उसके इतिहास से,
कोई आने–जाने के भाड़े से जानता है,
कोई उसे जानता है माल के भाव से,
कोई कपड़े के,
कोई जूते के भाव से जानता है।"

हमारी आज की युवा पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करती जा रही है। विवाह व्यवस्था जो कि हमारे समाज में बहुत ही पवित्र मानी जाती थी, उसका रूप विकृत होता जा रहा है। मानवीय जीवन संवेदनहीन यंत्रवत होकर रह गया है। अब हर संबंध को उपयोगिता की दृष्टि से देखा जा रहा है और संवेदना के स्तर पर मानव नितांत अकेला है।

"सारे संबंधों को भूला लिया है हमने

मरने से पहले हम इतने अकेले हो गए है।"

आधुनिकता के इस दौर में भारतीय नारी की विभिन्न स्थितियो ं को निरूपित किया है। नारी के प्रेमिका रूप के साथ–साथ माता का स्वरूप, पतिव्रता का रूप और घर की कामकाजी महिलाओ के प्रति संवेदना व्यक्त की गई है। इसी सबंधं में कुवर नारायण जी की कुछ पंक्तियाँ नितांत उल्लेखनीय है :–

"वह जो मुँह अंधेरे उठकर
घर के कामकाज मे ं लग गई,
एक बहुत बड़ी छाया है,
जो इस दुनिया पर छाई है"

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी के कविता साहित् को सचेतावस्था से जागरूक होकर सुधी पाठक कवि या साहित्यकार के अंतर दृष्टि को पहचानकर कवि के सामाजिक जिम्मेदारी संवेदनशीलता की सही पहचान करने से ही आम–पाठक युगीन सामाजिक विद्रूपताओं के विरोध में कड़ा संघर्ष कर, स्वस्थ सामाजिक निर्माण में अपने स्वस्थ सामाजिक जिम्मेदारी को निभाना पड़ेगा, तब कहीं जाकर सत्ता के प्रति चेतावनी की आवाज उठाया जा सकता है कि लोक–हित पर प्रश्न पूछे जा सकते है और उन सत्तासीन नेताओं को सत्त–पथ को आत्मसात कर चलने की चेतावनी दी जा सकती, जबकी प्रत्येक नागरिक अपने जिम्मेदारी को बखूबी निभाने में सफल दिखायी देता है। साहित्यकार युगीन परिस्थितियों के यथार्थ को बेझिझक अपने कविताओं में उकेरते हुए, सामाजिक जिम्मेदारी की ओर आम जनता को सतर्क भूमिका के निर्वाह का संकेत देते है।

संदर्भ संकेत

1. सिंह, सविता. (2005). नींद थी और रात थी (पृ. 12–18). नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
2. श्योराण, रेखा. (2012). खामोशियाँ बोलती हैं (पृ. 67–74). जयपुररू साहित्य मंडल।
3. अनामिका. (2011). खुरदरी हथेलियाँ (पृ. 89–96). नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
4. रघुवंशी, नीलेश. (2013). पानी की प्रार्थनाएँ (पृ. 101–108). भोपालरू मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी।
5. खान, वाजदा. (2015). माफ़ करना दोस्त (पृ. 55–62). लखनऊ साहित्य संगम।
6. जैन, सुनीता. (2009). राग और आग (पृ. 33–40). दिल्ली, साहित्य भारती।
7. शर्मा, दीपिका. (2019). स्त्री अस्मिता और कविता (पृ. 51–58). दिल्ली, विमर्श प्रकाशन।
8. मिश्रा, राकेश. (2020). दलित साहित्यः एक परिचय (पृ. 85–92). लखनऊ, दलित विमर्श।
9. यादव, संगीता. (2020). हिंदी कविता में दलित विमर्श (पृ. 109–116). पटना, दलित साहित्य प्रकाशन।
10. शर्मा, नीलम. (2021). पर्यावरण और समकालीन कविता (पृ. 69–76). जयपुर, हरित विमर्श।
11. सिंह, कविता. (2019). स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता (पृ. 57–64). भोपाल, साहित्य विमर्श।
12. वर्मा, अनीता. (2021). पर्यावरणीय चिंतन और हिंदी कविता (पृ. 49–56). जयपुर, हरित प्रकाशन।

©Copyright 2024 *ADRJ*. All Rights Reserved